

'नमस्ते समथर' उपन्यास का शिल्प विधान और भाषिक संरचना

श्री हेमेन्द्र कुमार

डॉ. बीरेन्द्र कुमार शर्मा

शोधार्थी एवं असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी

शोध निर्देशक एवं विभागाध्यक्ष - हिन्दी

इंस्टिट्यूट ऑफ़ ओरिएण्टल फिलॉसफी

इंस्टिट्यूट ऑफ़ ओरिएण्टल फिलॉसफी

वृन्दावन, मथुरा (उत्तरप्रदेश)

वृन्दावन, मथुरा (उत्तरप्रदेश)

Email - hemendrakumarbtp@gmail.com

शोध सार : मैत्रेयी पुष्पा हिन्दी के समकालीन कथा-साहित्य में अपनी अलग पहचान रखती हैं। अपने नये उपन्यास 'नमस्ते समथर' (2021ई.) के माध्यम से भी कुछ ऐसा ही करती हैं। इस उपन्यास में वे न सिर्फ साहित्यिक संस्थाओं के भीतर गहराई तक फैले पितृसत्ता और लैंगिक राजनीति पर सीधा वार करती हैं, बल्कि इस उपन्यास के द्वारा इसकी भाषा और शिल्प का भी बेजोड़ नमूना प्रस्तुत करती हैं। 'नमस्ते समथर' के कथानक की खूबियाँ, इसकी बनावट और भाषा-शैली का करीब से मूल्यांकन करने पर पता चलता है कि मैत्रेयी जी यहाँ सीधे वर्णन पर नहीं रुकतीं अपितु उनका शिल्प नाटक, आत्मसंस्मरण और विश्लेषण इन सबका दिलचस्प मेल बनाता है। उपन्यास की भाषा सिर्फ बातचीत या विचारों के आदान-प्रदान तक सीमित नहीं रहती। इसमें बुंदेलखंड की मिट्टी की खुशबू भी है और प्रतिरोध बहस की तीक्ष्ण धार भी।

कुंजी शब्द: नमस्ते समथर, शिल्प विधान, भाषिक संरचना, आंचलिकता, संवादात्मकता।

1. प्रस्तावना :

अधिकतर लोग मानते हैं कि साहित्यिक कृति की सफलता सिर्फ उसके विषय पर टिकी होती है। मगर हकीकत में, यह जानना भी उतना ही जरूरी है कि लेखक अपनी बात किस अंदाज में कह रहा है — अर्थात्, उसकी भाषा और शिल्प में क्या खास है? **क्रिस्टोफर कॉडवेल जैसे बड़े मार्क्सवादी आलोचक ने भी स्पष्ट कहा था कि “रूप और अंतर्वस्तु दोनों एक-दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते।”**¹ नए दौर के उपन्यासों में कई तरह के शिल्पिक प्रयोग नजर आते हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने पुराने उपन्यासों — जैसे चाक, इदन्नमम और अल्मा कबूतरी में गाँव और इलाके की दुनिया को बड़ी ही नयी, मजबूत शैली में गढ़ा था। लेकिन 'नमस्ते समथर' में उनका अंदाज बिलकुल बदल जाता है। यहाँ कहानी छोटे-मझोले शहरों के साहित्य समाज की असलियत को पकड़ती है। वहाँ की गुटबाजी, स्त्रियों की प्रतिभा को कैसे दबाया जाता है, इन सबको सामने लाती है। इन सबको असरदार और असरदार बनाने के लिए मैत्रेयी जी ने जो शिल्प चुना, वो कहीं जटिल है, कहीं परतदार। 'समथर' इस उपन्यास में सिर्फ एक स्थान विशेष नहीं रह जाता, वह कहानी के शिल्प का अहम हिस्सा बन जाता है। लेखिका ने समकालीन सोच और लोक-अनुभव की भाषा को मिलाकर कुछ नया रचा है। इससे पाठक को पढ़ने का अलग ही आस्वाद मिलता है। कुछ जाना-पहचान सा, ताजगी लिए हुए।

इस उपन्यास में आख्यान पद्धति की बात करें तो लेखक ने पहले पुरुष (उत्तम पुरुष) और तीसरे पुरुष (अन्य पुरुष) दोनों का बेहतरीन संतुलन गढ़ा है। जब उपन्यास की मुख्य नायिका कुन्तल अपनी तकलीफें सुनाती है, तो लगता है जैसे वो सीधे पाठक से बात कर रही हो। उपन्यास के ताने-बाने को इस तरह प्रस्तुत किया गया है कि पढ़ते-पढ़ते

पाठक कभी खुद को समथर की तंग गलियों में पाता है, तो कभी साहित्यिक गोष्ठियों की भीड़ में घिरा महसूस करता है। “एक बार समथर आ जाने पर फिर आप समथर की स्थितियों-परिस्थितियों के अधीन हो जाते हैं, यह समथर की ही नहीं, हर शहर-कस्बे की कहानी है।”²

इस तरह देखा जाए तो स्पष्ट दिखाई देता है कि यह उपन्यास किसी कल्पना पर नहीं, बल्कि हकीकत की ठोस जमीन पर खड़ा है।

2. नाटकीयता और दृश्य-योजना

उपन्यास में अभिव्यक्ति का अंदाज जबरदस्त है, लेकिन असली मजा तो उसके संवादों में है। जब हिंदी के अध्यापक बच्चों से क्लास में ‘प्रेम’ पर बात करते हैं, या कुंतल जब साहित्यिक संस्था के घाघ नेताओं से भिड़ती है—तब हर बातचीत मानो आंखों के सामने रंगमंच पर चल रही हो। हर बार दो बातें आमने-सामने हैं: एक तरफ कुंतल के अपने भीतर की खींचतान—आदर्शों और सख्त हकीकत के बीच—और दूसरी तरफ समाज और पुरुष-प्रधान सत्ता से उसकी टक्कर। यहीं से कहानी में एक नया मोड़ आता है। जिस संस्था को समाज को राह दिखानी चाहिए थी, वही आखिरकार भ्रष्टाचार और चमचागिरी का अड्डा बन जाती है। यह विरोधाभास उपन्यास को और भी नाटकीय बना देता है। ऊपर से स्कूल के मास्टर साहब का कुंतल के लिए चुपचाप पलता प्यार और अतीत की परत-दर-परत उभरती यादें, कहानी में खूब भावनात्मक-नाटकीय उतार-चढ़ाव ले आती हैं।

लेखिका की भाषा इतनी सुदृढ़ है कि पढ़ते वक्त लगता है कि सारा माहौल, हर जगह और दृश्य, आपकी आंखों के आगे किसी फिल्म की तरह घूम रहे हैं। उपन्यास शुरू होते ही ‘समथर’ कस्बा, उसके पुराने स्कूल, क्लासरूम, सह-शिक्षा के पल ये सभी दृश्य मानसिक पटल पर स्पष्ट बन जाते हैं। कवि सम्मेलन का शोर, पुरस्कारों के पीछे की गुपचुप राजनीति और उन सीक्रेट कमरों में होने वाली मीटिंग्स, सब कुछ इतनी असलियत से लिखा गया है कि पाठक को साहित्य जगत की कड़वी सच्चाई बिलकुल सामने नजर आती है। सामाजिक बंधनों में जकड़ी लड़कियों की हालत दिखाने के लिए लेखिका ने बेहद असरदार दृश्य गढ़े हैं—कई बार ये दृश्य दिल छू लेते हैं, जैसे लड़कियों का सपने देखने या नाचने पर रोक लगना। कहानी में बीच-बीच में अचानक अतीत के टुकड़े, मास्टर साहब और कुंतल के बचपन के स्कूल के दिन ऐसे आते हैं कि फिल्म के एडिटिंग जैसी काट-छांट का असर महसूस होता है। “जब मऊरानीपुर के इंटर कॉलेज में कुंतल पढ़ाती थीं तब तो आँखों के सामने ही थीं। पुस्तकालय संभालते हुए उनको मास्साब ने अपनी आँखों देखा था। वे भी अपनी पसन्दीदा किताबें वहाँ से लेते थे। किताबों के बहाने आना-जाना लगा रहता था।”³

3. भाषिक संरचना का विश्लेषणात्मक अध्ययन

भाषा की बात करें तो मैत्रेयी पुष्पा की सबसे बड़ी खूबी उसकी प्राणवत्ता है। ‘नमस्ते समथर’ की भाषा कोई बनावटी या किताबों वाली हिंदी नहीं, बल्कि मिट्टी से निकली और जीती-जागती भाषा है। यही उसे अलग बनाती है।

समथर की बोली की संरचना को चार हिस्सों में समझा जा सकता है – ध्वनि, रूप, वाक्य और शब्दावली।

ध्वनि संरचना

यहाँ बोलचाल की ध्वनियाँ आम हिंदी से थोड़ी अलग और खास हैं। मसलन, ‘ल’ का उच्चारण कई बार ‘र’ जैसा होता है: ‘काला’ को ‘कारो’, ‘बदला’ को ‘बदरो’ कहते हैं। शब्दों के आखिर में ‘ओ’ आने का चलन भी यहाँ खूब है – ‘लड़का’ से ‘लरको’, ‘छोटा’ से ‘छोटो’ हो जाता है। ‘श’ और ‘ष’ के बजाय दंत्य ‘स’ का इस्तेमाल भी खूब है: ‘शाम’ को ‘साम’, ‘वर्ष’ को ‘वरस’ बोलते हैं। कुछ महाप्राण ध्वनियाँ अल्पप्राण में बदल जाती हैं – जैसे ‘अभी’ को ‘अबे’।

रूप / संरचना

शब्दों की रचना में समथर की बोली अपनी अलग छाप छोड़ती है। संज्ञा शब्दों में लिंग और वचन के हिसाब से बदलाव आता है – बहुवचन बनाने के लिए ‘-न’ या ‘-नि’ जोड़ते हैं (‘लड़के’ से ‘लरकन’)। सर्वनाम भी अलग हैं – ‘मैं’ के लिए ‘हौं’ या ‘मै’, ‘तुम्हारा’ के लिए ‘तुमाओ’, ‘उसका’ के लिए ‘ऊको’ या ‘बाको’ कहते हैं।

“साहब, आप हेरो तो, सरदार तो वे चले आरये | संगे उनके साथी दिगमान सिंह हैं और... और वो औरत भी चली आरई, सो वो कौन है? हमने पुछा।”⁴

क्रिया रूप में भी फर्क मिलता है | वर्तमान काल में ‘है’ के बदले ‘हैं’, ‘अत है’ आता है (‘वह गाता है’ को ‘वो गाता है’) | भूतकाल के लिए ‘तो’, ‘ती’, ‘ते’ का प्रयोग करते हैं (‘वो गया था’ = ‘वो गओ तो’) | भविष्यत काल में क्रिया में ‘-है’ या ‘-हैं’ जोड़ते हैं (‘वो जाएगा’ = ‘वो जैहै’)

वाक्य संरचना

समथर की बोली में वाक्य रचना तो हिंदी जैसी ही है (कर्ता, कर्म, क्रिया) पर फिर भी कुछ अलग रंग दिखते हैं जैसे, ‘ने’ का प्रयोग आम तौर पर नहीं होता (‘उसने कहा’ को ‘ऊने कही’)। ‘को’ के लिए ‘खँ’ या ‘कौँ’ आ जाता है (‘राम को बुलाओ’ – ‘राम खँ बुलाओ’) | जोर देने के लिए वाक्य के अंत में ‘तौ’, ‘रे’, ‘पने’ जैसे शब्द बोलते हैं।

शब्द-सामर्थ्य और शब्दावली

यहाँ की शब्दावली में तीन रंग घुले मिले हैं –

- (1) तद्भव शब्द, जो संस्कृत से आए मगर अब ठेठ देसी हो गए,
- (2) देशज शब्द, जो सीधे यहाँ के जनजीवन और खेती-किसानी से निकले हैं (जैसे ‘खेला’ यानी ‘खलिहान’, ‘कलेऊ’ मतलब ‘सुबह का नाश्ता’),
- (3) और थोड़ा-बहुत अरबी-फारसी के शब्द भी – समथर की रियासती पृष्ठभूमि में दरबारी और प्रशासनिक भाषा के असर से।

“मास्साब हमेशा ही टिपटॉप आते हैं, सो आज भी थे | वे हमेशा ही सफ़ेद कमीज और नेवी ब्लू पैंट पहनकर आते हैं, यह पोशाक आज भी थी | तिरछी माँग निकालकर सँवारे हुए बाल उनको सलीकेदार बनाते हैं | कुल मिलाकर मास्साब की पर्सनैलिटी प्रभावशाली है, साँवला रंग भी उन पर फबता है।”⁵ कुल मिलाकर, समथर की बोली अपनी अलग शान और मिठास में जीती-सुनाई देती है।

4. आंचलिकता और लोक-तत्व

मैत्रेयी पुष्पा का जन्म बुंदेलखंड में हुआ, तो जाहिर है, उनकी कहानियों में बुंदेली बोली और लोक-जीवन की झलक अपने आप चली आती है | वैसे तो उपन्यास का माहौल एक साहित्यिक संस्था के इर्द-गिर्द घूमता है, लेकिन जब भी पात्र आपस में या खुद से बात करते हैं, बुंदेली रंग हर जगह दिखता है | “यहाँ सपने भी मर्दों से छिपकर देखे जाते हैं | माता-पिता और संरक्षकों की रस्सियों से बँधी लड़कियों के लिए तमाम दुःस्वप्न थे-- हमारी लड़कियाँ नाचेंगी तो इनके ब्याह कैसे होंगे?”⁶

ऐसी भाषा सुनते ही स्पष्ट होता है कि लेखिका आज की चर्चा-बहसों के बीच भी अपने गाँव की मिट्टी नहीं भूलतीं | ढेरों लोकगीतों की धुन, छोटी-छोटी कहावतें और मुहावरे यहाँ नई जान फूँकते हैं।

5. तत्सम, तद्भव और विदेशी शब्दों का समन्वय

अब भाषा की बात करें तो, मँझोले शहर के पढ़े-लिखे लोगों का असली तौर-तरीका दिखाने के लिए पुष्पा ने संस्कृतनिष्ठ (तत्सम) शब्दों के साथ-साथ अंग्रेजी के आम शब्द भी खूब इस्तेमाल किए हैं। “विजन”, “अकादमी”, “कमेटी”, “एजेंडा”—ये सब ऐसे घुल-मिल जाते हैं कि कॉपी-पेस्ट लगे बिना, पूरी तरह अपने ही लगते हैं। इससे उपन्यास अपने समय की मिली-जुली भाषा की सच्चाई को सामने लाता है।

- **संस्कृतनिष्ठ** (तत्सम): अस्मिता, स्पंदित, संप्रभुता, वैयक्तिक—इनसे बहस को गंभीरता मिलती है।

- देशज/बुंदेली: ब्याह, जीवट, सोंधी, ओट—ये जगह और लोगों को रेखांकित करते हैं, मिट्टी की महक सी आती है।

- विदेशी : पोस्ट, पॉलिटिक्स, स्टेटस—इनसे आधुनिक संस्थाओं की असलियत खुलती है।

6. शैलीगत वैशिष्ट्य और अभिव्यंजना शिल्प

अब बात इसे बाँधने वाली शैली की करें तो, उपन्यास की भाषा सीधी, तेज़, कभी तीखी और मर्म को चीरती हुई है। तथाकथित बुद्धिजीवियों के ढोंग को उजागर करने के लिए व्यंग्य का हथियार खूब चला है।

जब लेखक को उन पुरुषवादी किलों पर वार करना होता है, जो साहित्य की दुनिया में आज भी टिके हैं, भाषा सीधी भी हो जाती है और शायद कड़वी भी। कुन्तल जब शोषित होती है, तो शैली करुणा नहीं, विरोध रचती है। “आज मैं कमज़ोर नहीं पड़ना चाहती। मुझे तुझसे विद्या का बल चाहिए। यही वीणा दे कि झंकार उठे और अन्यायियों के बीच गुंजे। हे सरस्वती, तेरी यह मूर्ति तेरे ही रूप में मेरे साथ न जाने कब से है! अब यहाँ जो निर्णय मैं लूँगी वह मेरा नहीं, तेरा ही होगा। मैंने अपने गुरुओं से जो विद्या सीखी है, शिक्षा ली है, वह तेरी ही देन तो है।”⁷

7. संवादात्मकता

संवादों की बात करें तो, ‘नमस्ते समथर’ में लम्बे भाषणों की जगह छोटे, चुटीले, असरदार डायलॉग मिलते हैं। हर पात्र का मिजाज उसकी बोली से स्पष्ट नज़र आता है। पुरुषों में कहीं अदृश्य अहंकार और असुरक्षा है तो कुन्तल की बातों में तर्क और आत्म-सम्मान। बातचीत में जिस बदलाव की आज ज़रूरत है, वह यहाँ स्पष्ट झलकता है। “मैं जानता हूँ कुन्तल, तुम्हारी आशाएँ धूमिल हुई हैं लेकिन छोड़ो ये बातें, अब तो जिनके हाथ में लगाम है राजनीति का अश्व उनकी दिशा में ही चलेगा।” कुन्तल दो क्षण मास्साब को देखती रहीं जैसे कहना चाहती हो कि यही सब मानकर अपनी खैर मना ली जाए।”⁸

8. प्रतीक विधान और बिम्ब योजना

इस उपन्यास में प्रतीकों की अपनी दुनिया है। शीर्षक ही देखिए—‘नमस्ते समथर’—यह सिर्फ एक जगह का नाम नहीं, बल्कि उस समाज का संकेत है जो खुद को ‘समान’ दिखाता है, लेकिन असल में उसके अंदर गहरे भेद छुपे हैं। उपन्यास परत-दर-परत इन्हीं को खोलता है। “आखिर में कुन्तल ने समझ लिया, संयोजक जी मलखान के दलन से पीड़ित हैं। ऐसे लोग भी तो दलित होते हैं, जो जाति से नहीं, दादागीरी से दबाए जाते हैं। हो सकता है कि संयोजक जी के प्रति मेरी अन्धभक्ति ही रही हो।”⁹

9. निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि ‘नमस्ते समथर’ कथ्य और भाषा दोनों लिहाज से एक बड़ा कदम है। यह उपन्यास पारंपरिक ढाँचों को तोड़कर कुछ नया गढ़ता है, जिसमें आत्मकथात्मक सचाई और कहानी कहने का अलग तेवर है। मझोले शहर की भाषा और आंचलिक आत्मा के बीच जो पुल बनता है, वहीं समकालीन हिंदी उपन्यास को नयी रोशनी मिलती है। बुंदेली के अपनेपन और तेज़, धारदार शब्दों की बहस यहाँ खूब रंग जमाती है। ‘नमस्ते समथर’ बताता है कि एक लेखक अपने शब्दों के बूते पर किसी एक इलाके की लड़ाई को भी कितना बड़ा, मानवीय और सार्वकालिक बना सकता है। यह उपन्यास समकालीन आलोचना के लिए भाषा और शिल्प के नए मानदंड खड़ा करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. तिवारी, रामचंद्र; हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी; पृष्ठ - 412
2. पुष्पा, मैत्रेयी ‘नमस्ते समथर’ ((2021, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली – पृष्ठ संख्या – 32

3. पुष्पा, मैत्रेयी 'नमस्ते समथर' (2021), प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली – पृष्ठ संख्या -25
4. पुष्पा, मैत्रेयी 'नमस्ते समथर' (2021), प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली – पृष्ठ संख्या - 15
5. पुष्पा, मैत्रेयी 'नमस्ते समथर' (2021), प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली – पृष्ठ संख्या - 10
6. पुष्पा, मैत्रेयी 'नमस्ते समथर' (2021), प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली – पृष्ठ संख्या - 135
7. पुष्पा, मैत्रेयी 'नमस्ते समथर' (2021), प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली – पृष्ठ संख्या - 142
8. पुष्पा, मैत्रेयी 'नमस्ते समथर' (2021), प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली – पृष्ठ संख्या - 130
9. पुष्पा, मैत्रेयी 'नमस्ते समथर' (2021), प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली – पृष्ठ संख्या - 128